भक्ति

‘आनन्दमय जन्मदिवस’ के लिए
गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा चुना गया एक सद्गुण

सिद्धयोग ध्यान-शिक्षिका लॉरा डिकिन्सन द्वारा लिखित व्याख्या

‘भक्ति’ में निहित हैं, गहन श्रद्धायुक्त आदर व दिव्य आराधना का भाव, आन्तरिक विश्वास का भाव और बाह्य रूप में उसका अभ्यास करना।[१] ‘भक्ति’ एक संस्कृत शब्द है। वेदकालीन प्रतिष्ठित देवर्षि नारद ने इस विषय पर एक सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जिसका नाम है, ‘नारद भक्तिसूत्र।’ नारद मुनि भक्ति को “परम प्रेम रूप” कहकर परिभाषित करते हैं जिससे उनका तात्पर्य है, भगवान के प्रति प्रेम।[२] जब हम आध्यात्मिक पथ पर उन्नति करते जाते हैं तो इस प्रकार का विशुद्ध प्रेम नैसर्गिक रूप से, स्वतः ही स्फुरने लगता है।

सत्य के हर जिज्ञासु में यह अन्तर्जात क्षमता होती है कि वह अपने अन्तर में विद्यमान भक्ति के स्रोत तक पहुँच सके, क्योंकि आध्यात्मिक अभ्यासों को करने की उत्कट इच्छा अपने आपमें भक्ति ही है। जब आप आध्यात्मिक अभ्यास करते हैं तो भक्ति एक भाव के रूप में उभरती है जिसके कई रूप व रस हो सकते हैं, जैसे अन्तर में उभरने वाली गहन शान्ति की स्थिति; अमृत के समान मधुरता जो आपकी सत्ता के कण-कण में समा जाती है; एक आनन्दमय ऊर्जा जो आपके हृदय से प्रस्फुटित होती है।

भक्ति अपने आपमें एक अभ्यास भी है। तेरहवीं शताब्दी के महान सिद्ध-सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने बड़े ही काव्यात्मक ढंग से श्रीभगवद्गीता पर टीका लिखी है। भक्तिमय साधना के रहस्य को उजागर करने वाली यह टीका उस जिज्ञासु के लिए मार्ग खोल देती है जिसे अपने अन्दर भक्ति को पोषित करने की अभिलाषा है।

ज्ञानेश्वर महाराज लिखते हैं,

> कां चैतन्याचिये पोवळी - । माजीं आनंदाचां राउळीं।
> गुरुलिंगा ढाळी। ध्यानामृत॥
> उदयिजतां बोधार्का। बुद्धीची डाल सात्त्विका।
> भरोनि त्र्यंबका। लाखोली वाहे॥

> आत्मानन्द के मन्दिर में [साधक] अपने श्रीगुरु की मूर्ति को स्थापित करता है और ध्यान के अमृत से उसका अभिषेक करता है। जब ब्रह्म के बोध का सूर्य उदित होता है तो वह अपनी बुद्धिरूपी टोकरी को शुद्ध भाव के पुष्पों से भर लेता है; और शुद्ध भावरूपी इन्हीं पुष्पों को वह अपने गुरुरूपी भगवान शंकर [त्र्यंबक] को अर्पित करता है।[३]

इस व्याख्या में, साधक इस बोध में स्थिर होता है कि उसका हृदय एक मन्दिर है और वहाँ अपने गुरुदेव का मानस-चित्रण कर वह उन पर ध्यान करता है। जिस अन्तर-छवि का वह आवाहन करता है, वह भक्ति-भाव को जाग्रत करती है। जैसे-जैसे यह भक्तियुक्त प्रेम बढ़ता जाता है, साधक उसे एक पावन प्रसाद मानकर पुनः अपने श्रीगुरु को अर्पित करता है। वह इस बोध को बनाए रखता है कि श्रीगुरुदेव, भगवान त्र्यंबक [शंकर] हैं। जब साधक अपने अन्दर यह मानस-चित्रण करता रहता है तो उसके अन्तर में भक्ति जाग्रत होती है।

आप आन्तरिक रूप से, भगवान की सृष्टि के किसी पहलू पर अपना ध्यान केन्द्रित करके भी भक्ति का अभ्यास कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, आप प्रकृति के किसी दृश्य की कल्पना कर सकते हैं जैसे कि कोई भव्य पर्वत, एक विशाल वृक्ष या एक प्रशान्त झील। 'इन रूपाकारों में दिव्यता निहित है', इस बोध के साथ जब आप इनकी ओर अपना ध्यान ले आते हैं तो आपके हृदय के अन्तराकाश में भगवान के प्रति प्रेम उदित हो सकता है।

अपनी पुस्तक, *The Yoga of Discipline* में गुरुमाई जी भक्ति की महान शक्ति के विषय में समझाती हैं। वे कहती हैं,

> भगवान के प्रति भक्ति एक भावना से कहीं अधिक है। तुम्हारी भक्ति से भगवान तुम्हारे लिए सजीव हो उठते हैं। अपनी भक्ति से तुम अपने आराध्य को अपने शरीर में, अपने मन में, अपने जीवन में आमन्त्रित भी करते हो। निराकार वह आकार ले लेता है जिसके साथ तुम जुड़ सको।[४]

जब आप अपने इष्ट को, अपनी उपास्य मूर्ति को अपने अन्दर प्रतिष्ठापित करते हैं, तो एक आन्तरिक कीमियागरी घटित होती है। आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति, कुण्डलिनी आपके अन्दर विकसित होती जाती है और आप जिसकी आराधना कर रहे हैं उसके गुणों को आप अपने अन्दर ग्रहण करने लगते हैं। जब आप दृढ़ विश्वास के साथ यह मानने लगते हैं कि आपके अन्तर में भक्ति पल्लवित हो रही है तब आप भगवान के प्रति गहरे प्रेमभाव को पोषित करते हैं और इस प्रक्रिया में भगवान आपके लिए सजीव हो उठते हैं।

भक्ति के लिए अभिकथन

मैं दृढ़ विश्वास के साथ यह मानता हूँ कि
मेरे हृदय-मन्दिर में भक्ति की शक्ति विद्यमान है।

[अभिकथन—वे कथन जिन्हें जागरूकता के साथ बार-बार दोहराया जाता है ताकि वे हमारी चेतना में पैठ जाएँ।]

---

[१] *The Shorter Oxford English Dictionary,* पाँचवा संस्करण [ऑक्सफ़ोर्ड, इन्गलैण्डः ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, २००२]।

[२] भक्तिसूत्र, २; विलियम के. महोनी, *Exquisite Love: Reflections on the spiritual life based on Narada's Bhakti Sutra* [डेविडसन, NC : सर्वभाव प्रेस, २०१४] पृ. ३७।

[३] ज्ञानेश्वरी १३.३८६-८७।

[४] गुरुमाई चिद्विलासानन्द, *The Yoga of Discipline* [साउथ फॉल्सबर्ग, न्यूयॉर्क : एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन, १९९६] पृ. २६।

©२०२० एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।